

॥ ओ३म् ॥

सांख्यदर्शनम्
बह्ममुनिभाष्योपेतम्
तत्र
चतुर्थोऽध्यायः



भाष्य विस्तार - पूज्य स्वामी विवेकानंद जी परिव्राजक
(निदेशक- दर्शन योग महाविद्यालय)

[यह केवल निजी प्रयोग हेतु, अप्रकाशित, संशोधन अपेक्षित संग्रह है ।]

सांख्यदर्शनम्-चतुर्थोऽध्यायः

चतुर्थोऽध्यायः

राजपुत्रवत् तत्त्वोपदेशात् ॥ १ ॥

(तत्त्वोपदेशात्-राजपुत्रवत्) गतानन्तराध्यायान्तिमसूत्राद् विवेकोऽत्र सूत्रे लक्ष्यते । स च विवेकस्तत्त्वोपदेशाद् यथार्थोपदेशाज्जायते राजपुत्रवद् यथाऽनेकेषां राजपुत्राणां राजवंश्यानां जनकादीनां पञ्चशिखप्रभृतिसकाशात् तत्त्वोपदेशग्रहणाज्जातः । ब्राह्मणानामेव परम्परया विवेको जात इति न किन्तु क्षत्रियाणां राज्यसञ्चालनप्रवृत्तानामपि विवेको जात इति तत्त्वोपदेशस्य माहात्म्यं विवेकप्रादुर्भावे ॥ १ ॥

न हि साक्षादुपदेशादेव न च क्षात्रवंशपर्यन्तं हि विवेको जायतेऽपितु -

पिशाचवदन्यार्थोपदेशेऽपि ॥ २ ॥

(अन्यार्थोपदेशेऽपि पिशाचवत्) अन्यार्थं दीयमाने खलूपदेशेऽप्यन्यस्य समीपस्थस्य

चतुर्थोऽध्यायः

राजपुत्रवत् तत्त्वोपदेशात् ॥ १ ॥

सूत्रार्थ= तत्त्व का उपदेश सुनने से राजाओं को भी विवेक उत्पन्न हो जाता है, जैसे राजा जनक को हुआ था ।

[(तत्त्वोपदेशात्-राजपुत्रवत्) गतानन्तराध्यायान्तिमसूत्राद् विवेकोऽत्र सूत्रे लक्ष्यते] पिछले अध्याय के अंतिम सूत्र से यहाँ (इस सूत्र में) विवेक को ग्रहण कर लेंगे । [स च विवेकस्तत्त्वोपदेशाद् यथार्थोपदेशाज्जायते राजपुत्रवद्] वह जो विवेक है जो पिछले सूत्र में बताया-वह विवेक यथार्थ उपदेश से उत्पन्न होता है, राजपुत्र के समान । [यथाऽनेकेषां राजपुत्राणां राजवंश्यानां जनकादीनां पञ्चशिखप्रभृतिसकाशात् तत्त्वोपदेशग्रहणाज्जातः] जैसे अनेक राजपुत्रों का राज्यवंश वालों का जनकादि राजाओं ने पंचशिख जैसे आचार्यों से तत्त्व उपदेश ग्रहण किया । [ब्राह्मणानामेव परम्परया विवेको जात इति न किन्तु क्षत्रियाणां राज्यसञ्चालनप्रवृत्तानामपि विवेको जात इति तत्त्वोपदेशस्य माहात्म्यं विवेकप्रादुर्भावे] प्राचीन काल में केवल ब्राह्मणों को ही तत्त्वज्ञान विवेक उत्पन्न हुआ हो ऐसा नहीं है, किन्तु क्षत्रियों का भी हुआ जो राज्यसंचालन में लगे हुए थे उनका भी विवेक उत्पन्न हुआ था, इस प्रकार से तत्त्व उपदेश का माहात्म्य है विवेक की उत्पत्ति में ॥ १ ॥

ऐसा नहीं है की साक्षात् उपदेश से ही विवेक उत्पन्न हो और ऐसा भी नहीं है कि क्षत्रिय वंश वालों का ही विवेक उत्पन्न होता हो । अन्यो को भी हो सकता है-

पिशाचवदन्यार्थोपदेशेऽपि ॥ २ ॥

सूत्रार्थ= जब तत्त्वज्ञान का उपदेश किसी और को दिया जा रहा हो और निकट में अतिशूद्र = कम ज्ञान बुद्धि वाला उसको भी तत्त्वज्ञान हो जाता है ।

[(अन्यार्थोपदेश-अपि पिशाचवत्) अन्यार्थं दीयमाने खलूपदेशेऽप्यन्यस्य समीपस्थस्य श्रोतुस्तदुपदेशाद् विवेको जायते पिशाचवत्] अन्य को उपदेश दिये जाने पर भी पड़ोस में सुनने वाले का

सांख्यदर्शनम्-चतुर्थोऽध्यायः

श्रोतुस्तदुपदेशाद् विवेको जायते पिशाचवत्, यथाऽर्जुनाय कृष्णेन दीयमाने ह्युपदेशे पिशाचस्य समीपस्थस्य जाडलिकस्यातिशूद्रस्यापि किरातस्य 'भील' इत्याख्यस्य यथा वा पार्वत्यै शिवेन दीयमाने तथोपदेशे पिशाचस्य समीपस्थस्य पर्वतीयजनस्य शूद्रस्यापि सेवकस्य विवेको जातः ॥ २ ॥

प्रकारद्वयात् साक्षादसाक्षाद्वोपदेशग्रहणाद् विवेको जायत इति तूक्तं परन्तु केषाञ्चित् कदाचित् सकृदुपदेशाज्जायते विवेकः केषाञ्चित् कदाचिन्न तदा तु -

आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ॥ ३ ॥

(असकृत्-उपदेशात्-आवृत्तिः) पुनःपुनरुपदेशग्रहणादावृत्तिः कार्या पुनः पुनः श्रोतव्य उपदेशः । तद्यथा “ भूय एव मा भगवान् विज्ञापयतु ” (छान्दो० ६.५.४) श्वेतकेतुरारुणितः पुनः पुनरुपदेशं जग्राह ॥ ३ ॥

विवेक उत्पन्न हो गया (उपदेश किसी और को दिया जा रहा था, किसी निम्न स्तर के व्यक्ति ने उपदेश सुना और उसे तत्त्वज्ञान हो गया) यद्यपि सीधा-सीधा उपदेश उसके लिए नहीं था, पिशाच के समान, [यथाऽर्जुनाय कृष्णेन दीयमाने ह्युपदेशे पिशाचस्य समीपस्थस्य जाडलिकस्यातिशूद्रस्यापि किरातस्य 'भील' इत्याख्यस्य] जैसे अर्जुन के लिए श्री कृष्ण जी ने उपदेश दिया था उस समय पास में ही जो जंगली प्रदेश का व्यक्ति था उस भील “किरात” को तत्त्वज्ञान हो गया विवेक उत्पन्न हो गया [यथा वा पार्वत्यै शिवेन दीयमाने तथोपदेशे पिशाचस्य समीपस्थस्य पर्वतीयजनस्य शूद्रस्यापि सेवकस्य विवेको जातः] एक और उदाहरण दिया-कहीं पर्वत पर शिव जी पार्वती को उपदेश दे रहे थे पास में ही एक पर्वतीय व्यक्ति शूद्र (सेवक) बैठा था उसने वह उपदेश सुना जिससे उसको विवेक (तत्त्वज्ञान) हो गया ॥ २ ॥

पिछले सूत्रों में बताया- कि दो प्रकार से तो विवेक उत्पन्न होता ही है, एक साक्षात् सुनने से दूसरा परोक्ष में पड़ोस में सुन रहा हो। परंतु कुछ लोगों को कभी-कभी एक बार उदपेश सुनने मात्र से ज्ञान हो गया और कुछ को नहीं हुआ। तब क्या करना चाहिए-

आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ॥ ३ ॥

सूत्रार्थ=बार-बार उपदेश सुनकर उसकी आवृत्ति करने पर भी विवेक उत्पन्न हो जाता है।

[(असकृत्-उपदेशात्-आवृत्तिः) पुनःपुनरुपदेशग्रहणादावृत्तिः कार्या पुनः पुनः श्रोतव्य उपदेशः] जब एक बार उपदेश सुनने से तत्त्वज्ञान न हो, तो बार-बार उदपेश सुनने से विवेक उत्पन्न हो सकता है तद्यथा “ भूय एव मा भगवान् विज्ञापयतु ” (छान्दो० ६.५.४) श्वेतकेतुरारुणितः पुनः पुनरुपदेशं जग्राह जैसाकि एक उदाहरण दिया-उपनिषद् कि कथा है जिसमें श्वेतकेतु आरुणी से बार-बार उपदेश ग्रहण करता है, और कहता है हे भगवान्, आपने बहुत अच्छा समझाया लेकिन मुझे कुछ-कुछ समझ में आया, कृपा करके और बताइए ॥ ३ ॥

किसी-किसी व्यक्ति को किसी घटना के प्रभाव से भी तत्त्वज्ञान हो जाता है-

पितापुत्रवदुभयोर्दृष्टत्वात् ॥ ४ ॥

सांख्यदर्शनम्-चतुर्थोऽध्यायः

अथ च कस्यचिद् घटनाप्रभावादपि विवेको जायते -

पितापुत्रवदुभयोर्दृष्टत्वात् ॥ ४ ॥

(पितापुत्रवत्-उभयोः-दृष्टत्वात्) पितुर्मृत्युः पुत्रस्य जन्म च यथा भवति तथा ममापि जन्ममृत्युभ्यां भवितव्यं यतः पितृमृत्योः पुत्रजन्मदृष्टत्वात्, दृष्टो हि पितुर्मृत्युर्दृष्टं च पुत्रस्य जन्म मया “आत्मनः पितृपुत्राभ्यामनुमेयौ भवाप्ययौ” तर्ह्यस्मिन् जन्ममरणचक्रयुक्ते संसारे केवलं जन्माथ मरणमेव न पुरुषार्थ इति मत्वा निर्विण्णो विवेकं लभते ॥ ४ ॥

विवेकतो विषयाणां त्यागः कर्तव्य इति दृष्टान्तेनाह -

श्येनवत् सुखदुःखी त्यागवियोगाभ्याम् ॥ ५ ॥

(श्येनवत् सुखदुःखी) श्येनो मांसभक्षकः पक्षी भासस्तेन तुल्यो विषयग्रस्तो जनो भवति सुखी दुःखी च (त्यागवियोगाभ्याम्) विषयाणां त्यागाद् वियोगाच्च । स्वयमेव विषयत्यागात् सुखी

सूत्रार्थ= पिता की मृत्यु और पुत्र का जन्म देखकर इन दोनों घटनाओं को अपने पर लागू करने से विवेक उत्पन्न हो जाता है।

[(पितापुत्रवत्-उभयोः-दृष्टत्वात्) पितुर्मृत्युः पुत्रस्य जन्म च यथा भवति तथा ममापि जन्ममृत्युभ्यां भवितव्यं यतः पितृमृत्योः पुत्रजन्मदृष्टत्वात्] एक व्यक्ति अपने पुत्र का जन्म एवं अपने पिता की मृत्यु देखता है, इस घटना को वह अपने उपर लागू करता है और सोचता है “ऐसे ही मेरा भी जन्म हुआ ही होगा, पिता जी के समान मुझे भी मरना पड़ेगा, [दृष्टो हि पितुर्मृत्युर्दृष्टं च पुत्रस्य जन्म मया] मैंने पिता की मृत्यु और पुत्र का जन्म देखा है [“आत्मनः पितृपुत्राभ्यामनुमेयौ भवाप्ययौ”] पिता की मृत्यु और पुत्र के जन्म से अपने भी जन्म-मृत्यु को अनुमानित कर लेना चाहिए [तर्ह्यस्मिन् जन्ममरणचक्रयुक्ते संसारे केवलं जन्माथ च मरणमेव न पुरुषार्थ इति मत्वा निर्विण्णो विवेकं लभते] तो फिर इस जन्म-मरण से युक्त संसार में केवल जन्म ले लेना और मर जाना इतना ही तो पुरुषार्थ नहीं है, ऐसा मानकर उसे खिन्नता आती है और तत्त्वज्ञान के लिए पुरुषार्थ कर विवेक प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

विवेक वैराग्य की प्राप्ति के लिए रूप रस गंध आदि पाँच विषयों का त्याग करना चाहिए, इस विषय में एक दृष्टान्त देते हैं-

श्येनवत् सुखदुःखी त्यागवियोगाभ्याम् ॥ ५ ॥

सूत्रार्थ= बाज के समान विषय से ग्रस्त व्यक्ति सुखी-दुःखी होता है, विषयों के त्याग और वियोग से।

[(श्येनवत् सुखदुःखी) श्येनो मांसभक्षकः पक्षी भासस्तेन तुल्यो विषयग्रस्तो जनो भवति सुखी दुःखी च (त्यागवियोगाभ्याम्) विषयाणां त्यागाद् वियोगाच्च] श्येन मांसभक्षक एक पक्षी है जिसे भास (बाज) भी कहते हैं, वह विषयों से ग्रस्त होने के कारण सुखी दुःखी होता रहता है, विषयों के त्याग से और वियोग से। [स्वयमेव विषयत्यागात् सुखी भवति] स्वयं विचार पूर्वक विषयों का त्याग कर दे तो सुखी होता है, [अन्यथा विषयवियोगाद् दुःखी जायते] अन्यथा विषयों का त्याग नहीं करेगा तो एक दिन

भवति, अन्यथा विषयवियोगाद् दुःखी जायते, यथा श्येनो भासो मांसलोलुपः सामिषो व्योम्नि खलूड्यमानोऽपरैर्बलवद्भिर्मांसभक्षकैः पक्षिभिरामिषं हर्तुमाक्रान्तस्तन्मांसशकलत्यागेन सुखी भवति नो चेद् बलाद् वियोज्यमानो दुःखी जायतेऽन्यैराहन्यते । उक्तं हि “सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनोऽन्ये निरामिषाः । तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत ।” तथैव विवेकतो विषयत्यागः श्रेयान् सुखनिमित्तश्च, अन्यथा विषयवियोगस्तु निसर्गतोऽवश्यम्भावी तेन दुःखभागभवति । तस्माद् विवेकतो विषयत्यागो विधेयः ॥ ५ ॥

हेयस्य त्यागे हि सुखं विवेकिनो भवतीत्यपि दृष्टान्तेनोच्यते -

अहिर्निल्वयिनीवत् ॥ ६ ॥

(अहिः- निल्वयिनीवत्) यथा सर्पो ल्वयिनीं जीर्णां त्वचं त्यक्त्वा सुखी भवति तथैव विवेकी

छूट जाएंगे और छूट जाने से वियोग होगा जिससे वह दुःखी होता है, [यथा श्येनो भासो मांसलोलुपः सामिषो व्योम्नि खलूड्यमानोऽपरैर्बलवद्भिर्मांसभक्षकैः पक्षिभिरामिषं हर्तुमाक्रान्तस्तन्मांसशकलत्यागेन सुखी भवति नो चेद् बलाद् वियोज्यमानो दुःखी जायतेऽन्यैराहन्यते] जैसे बाज माँस का लोभी कभी माँस का टुकड़ा लेकर आकाश में उड़ रहा था, कुछ और पक्षी जो उससे बलवान थे उन्होंने उसे देख कर माँस को छुड़ाने के लिए बाज पर आक्रमण कर दिया, उस स्थिति में यदि बाज माँस का टुकड़ा स्वयं ही छोड़ दे तो सुखी हो जाएगा (कम से कम प्राण तो बचेंगे) अन्यथा बलात् छीनने पर माँस के टुकड़े से वियोग होगा फिर दुःखी होगा और आक्रमण से मारा भी जा सकता है । उक्तं हि “सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनोऽन्ये निरामिषाः । तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत ।” माँस के टुकड़े सहित उस पक्षी को देखकर अन्य जिन पक्षियों के पास माँस नहीं था, उन्होंने आक्रमण कर दिया, उस समय उस पक्षी ने माँस के टुकड़े को छोड़ सुखी हो गया [तथैव विवेकतो विषयत्यागः श्रेयान् सुखनिमित्तश्च] जैसे बाज ने विवेक पूर्वक विचार के माँस का टुकड़ा छोड़ सुखी हो गया ऐसे ही व्यक्ति का विवेक पूर्वक विषयों का त्याग कर देना अच्छा है सुख का कारण है, [अन्यथा विषयवियोगस्तु निसर्गतोऽवश्यम्भावी तेन दुःखभागभवति] अन्यथा विषयों का वियोग तो स्वभाव से ही अवश्यम्भावी है, उससे व्यक्ति दुःखी होता रहेगा । [तस्माद् विवेकतो विषयत्यागो विधेयः] इसलिए सार यही है कि विवेक पूर्वक विषयों का त्याग कर देना चाहिए ॥ ५ ॥

हेय वस्तु को त्यागने में ही विवेकी व्यक्ति को सुख होता है, इस विषय में एक दृष्टान्त देते हैं-

अहिर्निल्वयिनीवत् ॥ ६ ॥

सूत्रार्थ= जैसे साँप पुरानी कैंचुली को छोड़कर सुखी हो जाता है, वैसे ही विवेकी व्यक्ति इस अनेक बार भोगी हुई सृष्टि को छोड़कर सुखी हो जाता है ।

[(अहिः-निल्वयिनीवत्) यथा सर्पो ल्वयिनीं जीर्णां त्वचं त्यक्त्वा सुखी भवति तथैव विवेकी जनो बहुकालोपभुक्तां भुक्तभोगां भोगसृष्टिं विवेकतस्त्यक्त्वा सुखी भवति] जैसे साँप (पुरानी त्वचा) कैंचुली को त्यागकर सुखी हो जाता है उसी के समान विवेकी ज्ञानी व्यक्ति बहुतकाल से संसार को भोग रहा हूँ ऐसा विचार के इस भोगी हुई सृष्टि को त्यागकर सुखी हो जाता है ॥ ६ ॥

सांख्यदर्शनम्-चतुर्थोऽध्यायः

जनो बहुकालोपभुक्तां भुक्तभोगां भोगसृष्टिं विवेकतस्त्यक्त्वा सुखी भवति ॥ ६ ॥

भोगसृष्टित्यागे दृष्टान्तान्तरं दीयते -

छिन्नहस्तवद्वा ॥ ७ ॥

(वा) अथवा (छिन्नहस्तवत्) त्यजेदित्यन्वयः । यथा कश्चिज्जनोऽहिना दष्टं तद्विषेणाक्रान्तं हस्तं छिन्नं कारयित्वा छिन्नहस्तः सन् सुखं लभते तद्वद् दृष्टदोषां विषतुल्यां भोगसृष्टिं त्यक्त्वा सुखी भवति । भोगाः खलु विषकल्पाः । उच्यते हि “ विषस्य विषयाणां च दृश्यते महदन्तरम् । उपभुक्तं विषं हन्ति विषयाः स्मरणादपि । ” ॥ ७ ॥

त्यक्तस्य त्याजस्य वाऽनुचिन्तनमनिष्टकरमिति वर्णयते -

असाधनानुचिन्तनं बन्धाय भरतवत् ॥ ८ ॥

भोगसृष्टित्यागे दृष्टान्तान्तरं दीयते - भौतिक जगत के सुखों को नहीं भोगना चाहिए इनको त्यागने में ही सुख है, इस विषय में एक दृष्टान्त देते हैं-

छिन्नहस्तवद्वा ॥ ७ ॥

सूत्रार्थ= विवेकी व्यक्ति हानिकारक संसार के विषयों का त्याग करके सुखी हो जाता है, जैसे साँप द्वारा काटने पर व्यक्ति जहरीले हाथ को कटवाकर सुखी हो जाता है।

[(वा) अथवा (छिन्नहस्तवत्) त्यजेदित्यन्वयः] इसको छोड़ दें इस वाक्य को पिछले सूत्र से जोड़ लेंगे । [यथा कश्चिज्जनोऽहिना दष्टं तद्विषेणाक्रान्तं हस्तं छिन्नं कारयित्वा छिन्नहस्तः सन् सुखं लभते तद्वद् दृष्टदोषां विषतुल्यां भोगसृष्टिं त्यक्त्वा सुखी भवति] जैसे कोई व्यक्ति साँप के द्वारा काटा गया हो उसके हाथ पर विष चढ़ गया हो तो अपने हाथ को कटवाकर के, वह कटे हाथ वाला होकर भी सुखी हो जाता है । उसी प्रकार से विवेकी व्यक्ति ये जो सृष्टि है वह विष के तुल्य भोग सृष्टि को त्यागकर सुखी हो जाता है । [भोगाः खलु विषकल्पाः] ये जो भोग हैं वह विष के तुल्य हैं । [उच्यते हि “ विषस्य विषयाणां च दृश्यते महदन्तरम् । उपभुक्तं विषं हन्ति विषयाः स्मरणादपि । ”] किसी ने कहा- कि जब हम विष और विषयों की तुलना करते हैं तो बहुत अंतर दिखता है । विष यदि खाया तो मरेगा किन्तु विषयों के स्मरण मात्र से व्यक्ति मर जाता है ॥ ७ ॥

त्यागदी हों अथवा त्यागनी हो उन का बार बार चिंतन करना हानिकारक है-

असाधनानुचिन्तनं बन्धाय भरतवत् ॥ ८ ॥

सूत्रार्थ= जो विवेक का साधन नहीं है या अनुचित साधन है, उसको अपनाना (चिंतन करना) बंधन का कारण होता है, राजर्षि भरत के समान ।

[(असाधनानुचिन्तनम्) यद्विवेकज्ञानस्य साधनं नास्ति यद्वाऽनुचितसाधनं तथाभूतस्य त्यक्तस्य त्याज्यस्य वा पदार्थस्यानुचिन्तनं मनसि संस्थापनम् (बन्धाय भरतवत्) बन्धाय भवति भरतवत्] जो विवेक ज्ञान का साधन नहीं है अथवा अनुचित साधन है ऐसे स्वरूप वाले उस अनुचित साधन का छोड़ दिया

(असाधनानुचिन्तनम्) यद्विवेकज्ञानस्य साधनं नास्ति यद्वाऽनुचितसाधनं तथाभूतस्य त्यक्तस्य त्याज्यस्य वा पदार्थस्यानुचिन्तनं मनसि संस्थापनम् (बन्धाय भरतवत्) बन्धाय भवति भरतवत् । यथा भरतेन राजर्षिणा हरिणशावकस्य मनसि स्थापनं कृतं तद्वागात् तस्य बन्धो जातो न विमोक्षभागभूत् सः ॥ ८ ॥

विषयानुचिन्तनाभावेऽपि बहुसम्मेलनं नानुष्ठेयमित्युच्यते दृष्टान्तेन -

बहुभिर्योगे विरोधो रागादिभिः कुमारीशंखवत् ॥९॥

(बहुभिः-योगे विरोधः-रागादिभिः) बहुभिर्जनैः सह सङ्गे सम्मेलने विरोधः कलहो जायते तेषु रागद्वेषादिभिर्भावैर्वर्तमानैः, वर्तन्ते हि जनेषु रागद्वेषादयस्तस्माद् विरोधः सम्भाव्यते (कुमारीशंखवत्) यथा कुमारीचरणगताः शंखः भूषणविशेषाः परस्परं संघृष्य झणत्कुर्वन्ति भृशं शब्दायन्ते त्रुट्यन्ति च तद्वत् । तस्माद् विवेकिना बहुभिः सम्मेलनं न कार्यम् ॥९॥

अपितु -

हो अथवा छोड़ने योग्य हो ऐसे हानिकारक पदार्थ का चिन्तन करना अथवा मन में स्थान देना, ये बंधन को उत्पन्न करेगा भरतमुनि के समान । [यथा भरतेन राजर्षिणा हरिणशावकस्य मनसि स्थापनं कृतं तद्वागात् तस्य बन्धो जातो न विमोक्षभागभूत् सः] जैसे भरत मुनि राजर्षि जी हिरण के शावक को मन से चिन्तन किया उसमे राग किया जिससे उनका बंधन हुआ और वह मोक्ष से वंचित हो गए ॥ ८ ॥

विषयों का चिन्तन नहीं किया किन्तु बहुत से लोगों से संपर्क नहीं करना चाहिए इस बात को दृष्टान्त से समझाते हैं-

बहुभिर्योगे विरोधो रागादिभिः कुमारीशंखवत् ॥९॥

सूत्रार्थ= राग आदि से युक्त बहुत से सांसारिक लोगों के साथ सम्बंध जोड़ने से विरोध (झगड़ा) होता है, पैरों में बंधे घुंगरू के समान ।

[(बहुभिः-योगे विरोधः-रागादिभिः) बहुभिर्जनैः सह सङ्गे सम्मेलने विरोधः कलहो जायते तेषु रागद्वेषादिभिर्भावैर्वर्तमानैः] योगाभ्यासी व्यक्ति को बहुत सारे लोगों से सम्पर्क नहीं करना चाहिए, संग से विरोध और कलह होता है, क्योंकि सांसारिक लोगों में रागद्वेष के संस्कार वर्तमान रहते हैं, [वर्तन्ते हि जनेषु रागद्वेषादयस्तस्माद् विरोधः सम्भाव्यते] समाज के लोगों में रागद्वेष वर्तमान रहता है इसलिए विरोध की संभावना बनी रहती है [(कुमारीशंखवत्) यथा कुमारीचरणगताः शंखः भूषणविशेषाः परस्परं संघृष्य झणत्कुर्वन्ति भृशं शब्दायन्ते त्रुट्यन्ति च तद्वत्] जैसे कुमारी के चरणों में बंधे घुंगरू आपस में जब टकराते तो भीषण आवाज करते और टूटते भी जाते हैं । [तस्माद् विवेकिना बहुभिः सम्मेलनं न कार्यम्] इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति को बहुत लोगों से सम्पर्क मेलजोल नहीं करना चाहिए ॥ ९ ॥

अपितु -

द्वाभ्यामपि तथैव ॥१०॥

सांख्यदर्शनम्-चतुर्थोऽध्यायः

द्वाभ्यामपि तथैव ॥१०॥

(द्वाभ्याम्-अपि तथा-एव) द्वाभ्यां सहयोगे खल्वपि तथैव विरोधदोषो जायेतेति सम्भवः ।
तस्माद् विवेकिना त्वेकाकिनैव स्थेयम् ॥१०॥

यदि द्वाभ्यामपि सह न वसेत्तदैकाकिना कथं स्थेयमित्याकांक्षायामुच्यते -

निराशः सुखी पिश्लावत् ॥११॥

(निराशः सुखी) विवेकी जन आशां विहाय सुखी भवति (पिश्लावत्) पिश्ला काचिद्
वेश्या तादृशे कालेऽभूद् यदा सदाचारस्य प्राधान्यमासीद् यथा “न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः” (छन्दो० ५.११.५) तदा सा कामुकार्थिनी कामुकान्

सूत्रार्थ= रागी द्वेषी प्रवृत्ति वाले दो व्यक्तियों से भी सम्बंध जोड़ लेंगे तो झगड़ा होगा ।

(द्वाभ्याम्-अपि तथा-एव) द्वाभ्यां सहयोगे खल्वपि तथैव विरोधदोषो जायेतेति सम्भवः
अगर दो व्यक्ति भी साथ में रहेंगे तो विचारों में टकराव होने से विरोध होने की सम्भावना रहती है। [तस्माद्
विवेकिना त्वेकाकिनैव स्थेयम्] इसलिए जब तत्त्वज्ञान में उन्नति हो रही हो तब व्यक्ति को अकेला ही रहना
चाहिए ॥१०॥

यदि दो व्यक्तियों के साथ भी व्यक्ति न रहे और अकेला ही रहे, तो उसे अकेला कैसा रहना चाहिए?
इस आकांक्षा पर कहते हैं-

निराशः सुखी पिश्लावत् ॥११॥

सूत्रार्थ=विवेकी व्यक्ति सांसारिक आशाओं को छोड़कर सुखी हो जाता है, पिंगला के समान ।

[(निराशः सुखी) विवेकी जन आशां विहाय सुखी भवति (पिश्लावत्) पिश्ला काचिद्
वेश्या तादृशे कालेऽभूद् यदा सदाचारस्य प्राधान्यमासीद्] एक पिंगला नाम की वेश्या थी उस काल में
लोग सदाचारी अधिक थे जैसा की इतिहास में एक प्रमाण आता है- [यथा “न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो
न मद्यपो नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः”] राजा अश्वपति के राज्य में कोई चोर नहीं, कोई
मद्यपान नहीं करता, कोई विना यज्ञ किए भोजन नहीं करता, कोई भी कंजूस नहीं सभी दान देते हैं न मेरे राज्य
में कोई अविद्वान है सब शिक्षित हैं न कोई व्यभिचारी स्त्री है तो पुरुष कहाँ से होगा [(छन्दो० ५.११.५)
तदा सा कामुकार्थिनी कामुकान् प्रतीक्षमाणा कमपि कामुकमलभमाना पिश्ला सर्पणीवोच्छ्वसती
महती व्याकुलाऽऽस] उस काल में वेश्या को बहुत समय तक प्रतीक्षा करने पर भी कोई कामुक व्यक्ति
(ग्राहक) नहीं मिला तो क्रोध से सर्पणी के समान फुसकार ने लगी और बहुत व्याकुल अधीर हो रही थी
[पुनः सा महात्मन उपदेशात् त्यक्ताशा सुखिनी जाता] फिर एक महात्मा जी का निकालना हुआ उन्होने उस
वेश्या को दुःखी देख उससे दुख कारण पूछ उपदेश किया “आपके द्वारा किया जा रहा कार्य पाप है, किसी
का आशा करना ही दुख है आशा का त्याग करो” इस प्रकार आशा को त्यागकर वह वेश्या सुखी हो गयी ।
[पिश्ला नाम स्याद् योगवशात् कामुकानलब्ध्वा सा पिश्ला सर्पणी स्फुरन्तीव जाता बभूव] पिंगला

प्रतीक्षमाणा कमपि कामुकमलभमाना पिङ्गला सर्पणीवोच्छ्वसती महती व्याकुलाऽऽस पुनः सा महात्मन उपदेशात् त्यक्ताशा सुखिनी जाता । पिङ्गला नाम स्याद् योगवशात् कामुकानलब्ध्वा सा पिङ्गला सर्पणी स्फुरन्तीव जाता बभूव । अतएव विवेकात् विषयवासना त्याज्येति गम्यते, वासनया चित्तप्रसादोऽपिहितो भवति तदपगमात् स स्फुटीभवति । उक्तं यथा “यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् । तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥” (योग० २.४२ व्यासः) ॥ ११ ॥

अनारम्भेऽपि परगृहे सुखी सर्पवत् ॥ १२ ॥

(अनारम्भे-अपि) विवेकी जनः स्वगृहादिकस्यानुपार्जनेऽपि (परगृहे सुखी सर्पवत्) अन्यस्य गृहे सुखी भवति सर्पवत्, यथा सर्पः स्वगृहं नारभते न निर्माति प्रत्युत सुखी भवति गृहनिर्माणभारचिन्तया रहितश्च भवति तथैव विवेकी जनो गृहाद्युपार्जनचिन्तया रहितः सुखी भवति गृहस्य ममत्वाच्च विमुक्तस्तिष्ठति

नाम योग (गुण) के कारण भी हो सकता है, कामुक व्यक्ति न मिलने के कारण जब क्रोध से सर्पणी के समान फुफकार रही थी तो इस गुण के कारण भी नाम पिङ्गला हो सकता है । [अतएव विवेकात् विषयवासना त्याज्येति गम्यते] अतएव विषय वासना को विवेक से तत्त्वज्ञान से छोड़ देना चाहिए, ऐसा जानना चाहिए, वासनया चित्तप्रसादोऽपिहितो भवति तदपगमात् स स्फुटीभवति वासनाओं के कारण इच्छाओं के कारण हमारे चित्त की प्रसन्नता दब जाती है, यदि आशा का त्याग कर देते हैं तो चित्त की प्रसन्नता बढ़ जाती है । [उक्तं यथा “यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् । तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥” (योग० २.४२ व्यासः)] यदि हम अपनी इच्छाएँ कम रखें और संतोष का पालन करें तो हम इस संसार में सबसे अधिक सुखी हो सकते हैं, संसार में जो कामनाओं के पूरा होने से सुख होता है, और कभी कभी दिव्य महान बड़े बड़े सुख भी मिल जाते हैं अचानक से । इन दोनों सुखों को एक पलड़े में रखो और दूसरी तरफ जिसने इच्छों को छोड़ दिया है उस सुख को रखो । इन दोनों की तुलना करने पर सांसारिक सुख जो हैं वह इच्छाओं को त्यागने से जो सुख हुआ उसके-उसके सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं । ११ ॥

अनारम्भेऽपि परगृहे सुखी सर्पवत् ॥ १२ ॥

सूत्रार्थ= अपना घर न बनाकर भी विवेकी व्यक्ति दूसरे के घर (संस्था) आदि में सुखी रहता है, सर्प के समान ।

[(अनारम्भे-अपि) विवेकी जनः स्वगृहादिकस्यानुपार्जनेऽपि (परगृहे सुखी सर्पवत्) अन्यस्य गृहे सुखी भवति सर्पवत्] विवेक वैराग्य से युक्त तत्त्वज्ञानी व्यक्ति को अपना घर, आश्रम, मठ आदि का अर्जन (नहीं बनाना चाहिए) नहीं करना चाहिए, दूसरे के घर, आश्रम, कुटिया आदि में सुखी रहना चाहिए, साँप के समान, [यथा सर्पः स्वगृहं नारभते न निर्माति प्रत्युत सुखी भवति गृहनिर्माणभारचिन्तया रहितश्च भवति] जैसे साँप अपना घर नहीं बनाता बल्कि दूसरे के घर में रहके सुखी रहता है घर के निर्माण व्यवस्था आदि की चिन्ता से मुक्त रहता है [तथैव विवेकी जनो गृहाद्युपार्जनचिन्तया रहितः सुखी भवति गृहस्य

सांख्यदर्शनम्-चतुर्थोऽध्यायः

॥१२॥

नन्वेवं यत्र तत्र विचरन् विवेकी जनः किं कुर्यादित्युच्यते -

बहुशास्त्रगुरुपासनेऽपि सारादानं षट्पदवत् ॥१३॥

(बहुशास्त्रगुरुपासने-अपि) अनेकशास्त्राणामध्ययनात् तथा गुरुणां संसेवनात् समाश्रयात् सत्संगादपि (सारादानं षट्पदवत्) भ्रमर इव सारस्य ग्रहणं कुर्याद् विवेकदाढ्याय, यथा भ्रमरः पुष्पेभ्यः सारं रसं गृह्णाति ॥१३॥

सारं गृहीत्वा स्यादेकाग्रमनाः, यतः -

इषुकारवन्नैकचित्तस्य समाधिहानिः ॥१४॥

(इषुकारवत्-एकचित्तस्य समाधिहानिः-न) इषुकार इषुप्रक्षेप्ता-इषूपयोगकर्ता “किं विक्षेपे”

ममत्वाच्च विमुक्तस्तिष्ठति] वैसे ही विवेकी व्यक्ति ग्रह निर्माण अर्जन व्यवस्था आदि की चिन्ता से रहित होकर सुखी होता है, अपने घर का मोह-माया-राग आदि से भी मुक्त रहता है ॥ १२ ॥

प्रश्न है कि यहाँ तहाँ घूमता हुआ विवेकी व्यक्ति को किस प्रकार से अपना जीवन जीना चाहिए?

बहुशास्त्रगुरुपासनेऽपि सारादानं षट्पदवत् ॥१३॥

सूत्रार्थ= बहुत शास्त्रों का अध्ययन एवं गुरु आचार्यों की सेवा, सत्संग करने पर भी विवेकी व्यक्ति शास्त्र आदि से सार-सार को ग्रहण कर लेना चाहिए, भँवरे के समान।

[(बहुशास्त्रगुरुपासने-अपि) अनेकशास्त्राणामध्ययनात् तथा गुरुणां संसेवनात् समाश्रयात् सत्संगादपि (सारादानं षट्पदवत्) भ्रमरः इव सारस्य ग्रहणं कुर्याद् विवेकदाढ्याय] जो विवेकी वैराग्यवान् व्यक्ति है उसे अनेक शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए, गुरुओं के अनुशासन में रहना चाहिए, भँवरे के समान सार-सार को ग्रहण करते रहना चाहिए और विवेक को दृढ़ करना चाहिए, [यथा भ्रमरः पुष्पेभ्यः सारं रसं गृह्णाति] जैसे भँवरा फूलों में से सार-सार को ग्रहण करता है, ऐसे ही शास्त्रों का सार-सार ग्रहण करना चाहिए ॥ १३ ॥

सार को ग्रहण करके वह एकाग्रमन वाला हो जाए (समाधि लगाए), क्योंकि -

इषुकारवन्नैकचित्तस्य समाधिहानिः ॥१४॥

सूत्रार्थ=अपने मन को एक लक्ष्य (ईश्वर) में स्थिर करने वाले विवेकी व्यक्ति की समाधि हानी नहीं होती, तीरंदाज (तीर चलाने वाले) के समान।

[(इषुकारवत्-एकचित्तस्य समाधिहानिः-न) इषुकार इषुप्रक्षेप्ता-इषूपयोगकर्ता “किं विक्षेपे” (तुदादि०) “कृञ् करणे” (तनादि०) “कृञ् निक्षेपणे चापि वर्तते कटे कुरु घटे कुरु, अश्मानमितः कुरु स्थापयेति गम्यते” (महाभाष्य व्या० १.३.१)] इषुकार शब्द पर चर्चा है- इषू कहते हैं वाण को।

(तुदादि०) “कृञ् करणे” (तनादि०) “कृञ् निक्षेपणे चापि वर्तते कटे कुरु घटे कुरु, अश्मानमितः कुरु स्थापयेति गम्यते” (महाभाष्य व्या० १.३.१) अनेन इषुकार इषुप्रक्षेप्ता । तथा “कन्याया दक्षिणत उदङ्मुखो मन्त्रकारः” (वाराहगृह्यसूत्रम् ख० १३) मन्त्रकारो मन्त्रप्रयोक्ता ब्रह्मा तथैवात्र इषुकारः - इषुप्रयोगकर्ता । तस्येष्टुप्रक्षेपुप्रयोगकर्तुर्यथैकचित्तस्य स्थितिर्भवति तदानीं न स लक्ष्यं विहायान्यमना भवति नान्यान् पश्यति तथैव विवेकिन एकचित्तस्य सतः समाधिहानिर्न भवति ॥१४॥

पुनश्च स विवेकी मुमुक्षुर्व्रतनियमपरायणो भवेत् । यतः -

व्रतनियमलंघनादानर्थक्यं* लोकवत् ॥१५॥

(व्रतनियमलंघनात्) व्रतानि सन्ति खल्वहिंसादयः पञ्च नियमाश्च शौचादयः पञ्च तेषां लंघनादुल्लंघनात् त्यागात् (आनर्थक्यं लोकवत्) आनर्थक्यमनर्थकत्वं प्रसज्यते लोकवत्, यथा लोके व्रतनियमभंगी खल्वनर्थं भजते लोकव्यवहाराच्च्यवते न सोऽर्थफलभागभवति तथैव मुमुक्षुर्व्रतनियमभ

इषूकार का सामान्य अर्थ “तीर बनाने वाला” यहाँ ये अर्थ नहीं लेंगे। इषू (तीर) चलाने वाला अर्थ लेंगे। यहाँ “कृ” धातु है विक्षेप अर्थ में, फेंकने अर्थ में, बनाने अर्थ में भी होता है जैसे- चटाई पर रख दो, इस पत्थर को उठाकर यहाँ रख दो [अनेन इषुकार इषुप्रक्षेप्ता] इस प्रकार यहाँ अर्थ होगा तीर को फेंकने वाला। [तथा “कन्याया दक्षिणत उदङ्मुखो मन्त्रकारः”] जैसे कर्मकाण्ड में “कन्या दक्षिण में बैठकर उत्तराभिमुख हो मन्त्रकार (मन्त्र का प्रयोग करने वाला) ऐसा निर्देश करता है” [(वाराहगृह्यसूत्रम् ख० १३) मन्त्रकारो मन्त्रप्रयोक्ता ब्रह्मा तथैवात्र इषुकारः-इषुप्रयोगकर्ता] जैसे यहाँ पर मन्त्र कार का अर्थ है मन्त्र का प्रयोग करने वाला ब्रह्मा। उसी प्रकार से यहाँ इषूकार का अर्थ है इषू का प्रयोग करने वाला। [तस्येष्टुप्रक्षेपुप्रयोगकर्तुर्यथैकचित्तस्य स्थितिर्भवति तदानीं न स लक्ष्यं विहायान्यमना भवति नान्यान् पश्यति तथैव विवेकिन एकचित्तस्य सतः समाधिहानिर्न भवति] जैसे तीर फेंकने वाला व्यक्ति तीर चलाने वाले व्यक्ति एक चित्त होकर तीर फेंकता है, जैसे उसके चित्त कि स्थिति होती है वह अपने लक्ष्य को छोड़कर कहीं और मन नहीं लगाता इधर-उधर नहीं देखता, उसी प्रकार से विवेकी व्यक्ति को एक चित्त होकर ईश्वर प्राप्ति के लक्ष्य को बनाकर साधना करे तो उससे उसकी समाधि हानि नहीं होगी, लक्ष्य से नहीं भटकेगा । ॥१४॥

फिर वह विवेकी मुमुक्षु व्यक्ति यम-नियमों का पालन करे। क्योंकि-

व्रतनियमलंघनादानर्थक्यं* लोकवत् ॥१५॥

सूत्रार्थ= अहिंसा आदि पाँच व्रत हैं, शौच आदि पांच नियम हैं, इनके उलंघन करने पर विवेकी व्यक्ति अनर्थ (हानि) को प्राप्त करता है, लौकिक व्यक्ति के समान।

[(व्रतनियमलंघनात्) व्रतानि सन्ति खल्वहिंसादयः पञ्च नियमाश्च शौचादयः पञ्च] अहिंसा सत्य आदि यमों का पालन करना ये सार्वभौम महाव्रत है, शौच, संतोष आदि नियमों का व्यवहार में पालन करना है [तेषां लंघनादुल्लंघनात् त्यागात्] इन यम नियमों का उलंघन करने से त्याग करने से [(आनर्थक्यं

सांख्यदर्शनम्-चतुर्थोऽध्यायः

गादनर्थं भजते स्वपुरुषार्थाच्च्यवते ॥१५॥

न केवलं व्रतनियमानां लंघ्यादेवानर्थं भजते किन्तु -

तद्विस्मरणेऽपि भेकीवत् ॥१६॥

(तद्विस्मरणे-अपि भेकीवत्) व्रतनियमानां विस्मरणेऽपि भेकीवदनर्थभागभवति । भेकानां मण्डूकानां वर्षान्तं यावद्वर्षं नैसर्गिकं व्रतं मौनं नियमश्च गुप्तनिवासः । वर्षासु हि भाषणं बहिरागमनं च तेषां भवति न पूर्वम् । उक्तं हि वेदे “संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः । वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥” (ऋ० ७.१०३) किन्तु तथाभूतं व्रतं नियमं च विस्मृत्य काचिद् भेकी गुप्तस्थानाद् बहिरागताऽथ चोच्चैर्बभाषे, तस्याः शब्दं श्रुत्वा बहिरागतां च दृष्ट्वा तां सर्पो भक्षयामास । तथैव यो विवेकी मुमुक्षुः स्वव्रतनियमान् विस्मरति सोऽपि मनाग्विनष्टो भवति ॥१६॥

लोकवत्) आनर्थक्यमनर्थकत्वं प्रसज्यते लोकवत्] हानि उठानी पड़ती है जैसे संसार में लोगों को होती है, [यथा लोके व्रतनियमभंगी खल्वनर्थं भजते लोकव्यवहाराच्च्यवते न सोऽर्थफलभागभवति] जैसे संसार में देखते हैं जो व्यक्ति व्रत नियमों को भंग करता है वह अनर्थ का भागी होता है लौकिक व्यवहार से वह छूट जाता है, गिर जाता है, फिर उसको अच्छा फल नहीं मिलता उसको सम्मान नहीं मिलता [तथैव मुमुक्षुर्व्रतनियमभंगादनर्थं भजते स्वपुरुषार्थाच्च्यवते] उसी प्रकार से मुमुक्षु की भी यदि यह व्रत नियमों का उल्लंघन करता है तो अनर्थ का भागी होता है, उसका व्यवहार ठीक नहीं रहता, उसका जितना भी पुरुषार्थ था वह निरर्थक हो जाता है ॥१५॥

केवल व्रत नियमों का उल्लंघन करने से व्यक्ति की हानि नहीं होती किन्तु-

तद्विस्मरणेऽपि भेकीवत् ॥१६॥

विवेकिना मुमुक्षुणा कृतनियमपरायणेन भवितव्यमित्युच्यते -

सूत्रार्थ= व्रत और नियम को भूल जाने पर मुमुक्षु व्यक्ति को हानि उठानी पड़ती है, मेडकी के समान ।

[(तद्विस्मरणे-अपि भेकीवत्) व्रतनियमानां विस्मरणेऽपि भेकीवदनर्थभागभवति] यम-नियम आदि व्रतों को भूल जाने पर भी व्यक्ति भेकी (मेडक) के समान दुःख उठाता है । [भेकानां मण्डूकानां वर्षान्तं यावद्वर्षं नैसर्गिकं व्रतं मौनं नियमश्च गुप्तनिवासः] भेकी मेडकी का वर्ष भर एक व्रत रहता है मौन रहने का गुप्त रहने का नियम रहता है जब वर्षा आरंभ न हो । [वर्षासु हि भाषणं बहिरागमनं च तेषां भवति न पूर्वम्] बरसात में वे बाहर आते हैं भाषण करते हैं लोग उनको देखते हैं उससे पहले नहीं । [उक्तं हि देहे “संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः । वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥”] वेद में कहा कि ब्राह्मण विद्वान् जन वर्ष भर सबसे विरक्त होके व्रतों का पालन करते हैं तपस्या करते हैं, वर्षा ऋतु में चातुर्मास के अंतर्गत जैसे बादल शोर करते हैं, मेडक शोर करते हैं बाहर आके वैसे ही इनके व्याख्यान प्रवचन आदि होते हैं [(ऋ० ७.१०३.१) किन्तु तथाभूतं व्रतं नियमं च विस्मृत्य काचिद् भेकी गुप्तस्थानाद् बहिरागताऽथ चोच्चैर्बभाषे] किन्तु जैसे गुप्त रहने मौन रहने का नियम है उस नियम को तोड़कर एक मेडकी

सांख्यदर्शनम्-चतुर्थोऽध्यायः

[पञ्चदशषोडशसूत्रयोरर्थः पञ्चदशसूत्रेऽनिरुद्धपाठमवलम्ब्य त्वेषोऽस्ति विज्ञानभिक्षुभाष्यानुसारतः पाठमाश्रित्य तयोर्व्याख्यामार्गः प्रदर्श्यते -]

[विवेकिना मुमुक्षुणा कृतनियमपरायणेन भवितव्यमित्युच्यते -]

कृतनियमलंघनादानर्थक्यं* लोकवत् ॥१५॥

[(कृतनियमलंघनात्) यः खलु विवेकिने मुमुक्षवे शास्त्रे नियमो निर्दिष्टः सोऽवश्यं धारणीयः पालनीयश्च । येन हि स नियमः कृतो धारितो यदि स लङ्घ्येत् तं तर्हि तस्य कृतस्य नियमस्य लङ्घनादुल्लंघनात् (आनर्थक्यं लोकवत्) आनर्थक्यं व्रजेत् स लोकवत्, यथा लोके यः स्वास्थ्यलाभाय कृतं नियममुल्लङ्घ्येदपथ्यमाचरेत् सोऽनर्थं भजते स्वास्थ्याच्च्यवते तथैव विवेकी स्वानुकूलं कृतं

बाहर आती है, [तस्याः शब्दं श्रुत्वा बहिरागतां च दृष्ट्वा तां सर्पो भक्षयामास] उसके शब्द को शोर को साँप ने सुना और मेडकी को देखकर वह उसे खा गया । [तथैव यो विवेकी मुमुक्षुः स्वव्रतनियमान् विस्मरति सोऽपि मनाग्विनष्टो भवति] उसी प्रकार से जो विवेकी मुमुक्षु व्यक्ति अपने व्रत नियम को भूल जाता है वह भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ १६ ॥

विवेकी मुमुक्षु को किए हुए नियम पर तत्पर रहना चाहिए, यह कहते हैं=

कृतनियमलंघनादानर्थक्यं* लोकवत् ॥१५॥

सूत्रार्थः-यम नियम का उलंघन करने से विवेकी योगाभ्यासी को हानि उठानी लौकिक व्यक्ति के समान ॥

भाष्यार्थः-(कृतनियमलंघनात्) विवेकी मुमुक्षु के लिए शास्त्र में जो नियम निर्दिष्ट किया है, बतलाया है, उसका विवेकी मुमुक्षु को अवश्य धारण और पालन करना चाहिए । क्योंकि धारण किए हुए नियम के उलंघन से तो (आनर्थक्यं लोकवत्) अनर्थकता=बन्धता को प्राप्त हो जाता है, लोक की भांति । जैसे लोक में स्वास्थ्य लाभ के लिए किए नियम का उलंघन करके अनर्थ को प्राप्त होता है, अर्थात् रोग को प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

केवल किए नियम के उलंघन से ही अनर्थ को प्राप्त होता है, ऐसा ही नहीं है, किन्तु-

तद्विस्मरणेऽपि भेकीवत् ॥१६॥

सूत्रार्थः- व्रत-नियमों को भूलने से भी अनर्थ होता है राजकुमारी के समान ॥

भाष्यार्थः-(तद्विस्मरणे-अपि भेकीवत्) 'भेकी' यह नाम गुणों के कारण किसी सुकुमारी राजकुमारी का है, वह भेकी=मेण्डकी के समान जल में देर तक डुबकियां लगाते रहने के व्यसन वाली हो गई, अतः वह गुणानुसार 'भेकी' नाम से प्रसिद्ध हो गई । वह सुकुमारी राजकुमारी बहुत सौन्दर्ययुक्त थी । जल में कहीं डूब न जाए इस भय के कारण माता-पिता, राजा-रानी तथा अन्य रक्षिकाओं से अति प्रयत्न से रक्षा रखी जाती थी ॥

सांख्यदर्शनम्-चतुर्थोऽध्यायः

नियममुल्लङ्घ्यानर्थं ब्रजेन्मोक्षमार्गाच्च्यवेत ॥१५॥]

[न केवलं कृतनियमलङ्घनादनर्थं भजते किन्तु -]

तद्विस्मरणेऽपि भेकीवत् ॥१६॥

(तद्विस्मरणे-अपि भेकीवत्) 'भेकी' इति नाम गुणवशात् कस्याश्चिद् राजकुमार्याः सुकुमार्याः, सा खलु भेकीवज्जले चिराय निमज्जनव्यसना बभूव तस्मात्सा गुणानुसारिणीं भेकीं संज्ञामाप्तवाती। सा च राजकुमारी सुकुमारी बहुसौन्दर्यापन्ना मातापितृभ्यां रक्षिकाभिश्च जले निमज्जनभयादतिप्रयत्नेन रक्षिता पुनस्तस्याः विवाहो योग्येन राजकुमारेण सह तन्मातापितृभ्यां कृतः, तस्याश्च जले निमज्जनव्यसनं ज्ञापितं जलाद् भयाय च सूचितो राजकुमारो यदेषा क्वचिज्जले न प्रवेश्या । स च राजकुमारस्तद्विषये

पुनः उसको विवाह योग्य राजकुमार के साथ कर दिया गया और उसके जल में डुबकियां लगाने के व्यसन को भी राजकुमार को बतलाकर जल से भय सूचित किया कि इसे कहीं जल में प्रवेश न करने देना। वह राजकुमार भी कृतनियम=कृतप्रतिज्ञ हो गया कि मैं इसे जल में प्रवेश न करने दूंगा। पुनः किसी समय मृगयार्थ उसे साथ ले गया, वहां जंगल में बहुत भ्रमण की थकावट से और गरमीताप को न सह सकने से व्याकुल होकर उसने जलपान और स्नान के लिए राजकुमार से जलाशय पूछा, राजकुमार ने शीघ्रतावश उस किए नियम को भूलकर महान् जलाशय बतला दिया वह राजकुमारी तुरन्त वेग से उसमें प्रविष्ट होकर डूब गई। राजकुमार देर तक खोज करने पर भी उसे पा न सका। पुनः वह गहन शोकसागर में डूब गया और शान्ति प्राप्त न कर सका। इस व्याख्या में 'भेकीवत्' वत् प्रत्यय सप्तमी विभक्ति में है-“तत्र तस्यैव” (अष्टा० ५.१.११६)। इसी प्रकार जो कोई विवेकी मुमुक्षु अपने कृतनियम=करी प्रतिज्ञा को भूलेगा तो वह अवश्य शोकसागर में गिरेगा ॥१६॥

जिसको विवेक उत्पन्न हो गया है ऐसे व्यक्ति को जो-जो करना चाहिए उसको बताने के बाद विवेक प्राप्ति के लिए श्रवण आदि चार कार्यों का निर्देश किया है-

नोपदेशश्रवणेऽपि कृतकृत्यता परामर्शादृते विरोचनवत् ॥१७॥

सूत्रार्थ= केवल उपदेश सुनने पर भी सफलता नहीं मिलती मनन और निदिध्यासन के बिना, जैसे विरोचन को नहीं मिली।

[(उपदेशश्रवणे-अपि कृतकृत्यता न) यद्यप्युपदेशस्य श्रवणमावश्यकं न हि श्रवणमन्तरेण कस्यचिज्ज्ञानं भवति] यद्यपि उपदेश सुनना आवश्यक है उपदेश सुने बिना किसी को ज्ञान नहीं होता, [परन्तु केवलं श्रवणमेव पर्याप्तमिति] परन्तु केवल मात्र उपदेश सुनलेना पर्याप्त नहीं होता, [यतो हि श्रवणे सत्यपि न कृतकृत्यता-साफल्यं न सम्भवति] क्योंकि सुनने मात्र पर कृतकृत्यता सफलता नहीं होती, [(परामर्शात्-ऋते) परामर्शोऽत्र मनननिदिध्यासनार्थः] परामर्श शब्द से अर्थ है मनन और निदिध्यासन। इनके बिना संभव नहीं है। [मनननिदिध्यासनाभ्यां विना, श्रवणानन्तरं मनननिदिध्यासनाभ्यां

कृतनियमो जातः पुनः कदाचित् क्वचिन्मृगयार्थं सह तां नीतवान् तत्र च सा बहुभ्रमणश्रान्त्या ग्रीष्मतापमसोऽह्वा व्याकुलीभूत्वा राजकुमारं जलपानाय जलस्नानाय च जलाशयं पृष्ठवती, राजकुमारः शैर्घ्यात् तं कृतनियमं विस्मृत्य दर्शितवान् महान्तं जलाशयं सा च सद्यस्तत्र वेगेन प्रविश्य निममज्ज । राजकुमारश्च चिरमन्विष्य तां न लेभे पुनश्च सोऽपि गहने शोकसागरे निममज्ज न शान्तिमवाप्तवान् । अत्र व्याख्याने 'भेकीवत्' वत्प्रत्ययः सप्तम्याम् "तत्र तस्येव" (अष्टा०५.१.११६) । एवं यः कश्चिद् विवेकी मुमुक्षुः स्वकृतनियमं विस्मरेत् सोऽवश्यं शोकसागरे निपतेत् ॥१६॥

जातविवेकस्य चर्याविधानानन्तरमधुना विवेकप्राप्तये श्रवणादिकं निर्दिश्यते-

नोपदेशश्रवणेऽपि कृतकृत्यता परामर्शादृते विरोचनवत् ॥१७॥

(उपदेशश्रवणे-अपि कृतकृत्यता न) यद्यप्युपदेशस्य श्रवणमावश्यकं न हि श्रवणमन्तरेण

भवितव्यमेव न तद्विना कृतकृत्यता] श्रवण के पश्चात् मनन और निदिध्यासन किए बगैर कृतकृत्यता नहीं होती, उपदेश का लाभ पूरा-पूरा नहीं होता समझ में नहीं आता [(विरोचनवत्) यथा प्रजापतिसकाशाच्छ्रवणमिन्द्रविरोचनाभ्यां कृतं परन्तु विरोचनेन श्रवणानन्तरं मनननिदिध्यासने न कृते तस्मात् तस्य कृतकृत्यता न जाता] जैसे प्रजापति से श्रवण तो दो व्यक्तियों ने किया इंद्र और विरोचन ने । परन्तु विरोचन ने श्रवण के पश्चात् मनन और निदिध्यासन ये दो कार्य नहीं किए इसलिए उसकी सफलता विवेक प्राप्ति में नहीं हुई ॥१७॥

किन्तु -

दृष्टस्तयोरिन्द्रस्य ॥१८॥

सूत्रार्थ= उन दोनों (इन्द्र और विरोचन) में से इन्द्र का मनन निदिध्यासन देखा गया, इसलिए उसको सफलता मिली ।

[(तयोः-इन्द्रस्य दृष्टः) इन्द्रविरोचनयोरिन्द्रस्य परामर्शो मनननिदिध्यानसरूपो दृष्टः, तस्मात् कृतकृत्यता जाता] उन दोनों इंद्र और विरोचन में से इन्द्र का मनन और निदिध्यासन देख गया, इसलिए उसकी सफलता साक्षात्कार हो गया ॥१८॥

श्रवण से ज्ञान प्राप्ति होती है वह भी तब जब बुद्धि पूर्वक श्रवण किया जाए, विधि पूर्वक श्रवण न करने से शाब्दिक ज्ञान भी कम होता है- इस विषय पर कहते हैं-

प्रणतिब्रह्मचर्योपसर्पणानि कृत्वा सिद्धिर्बहुकालात् तद्वत् ॥१९॥

सूत्रार्थ= गुरु भक्ति, नम्रता, सेवा, समर्पण की भावना तथा ब्रह्मचर्य का पालन लम्बे काल तक करने पर तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है, इन्द्र के समान ।

सांख्यदर्शनम्-चतुर्थोऽध्यायः

कस्यचिज्ज्ञानं भवति, परन्तु केवलं श्रवणमेव पर्याप्तमिति न, यतो हि श्रवणे सत्यपि न कृतकृत्यता-साफल्यं न सम्भवति, (परामर्शात्-त्रुते) परामर्शोऽत्र मनननिदिध्यासनाभ्यां भवितव्यमेव न तद्विना कृतकृत्यता (विरोचनवत्) यथा प्रजापतिसकाशाच्छ्रवणमिन्द्रविरोचनाभ्यां कृतं परन्तु विरोचनेन श्रवणानन्तरं मनननिदिध्यासने न कृते तस्मात् तस्य कृतकृत्यता न जाता ॥१७॥

किन्तु -

दृष्टस्तयोरिन्द्रस्य ॥१८॥

(तयोः-इन्द्रस्य दृष्टः) इन्द्रविरोचनयोरिन्द्रस्य परामर्शो मनननिदिध्यानसरूपो दृष्टः, तस्मात् कृतकृत्यता जाता ॥१८॥

अथ च श्रवणादपि ज्ञानसिद्धिर्यथाविधानादेव भवति न विधिहीनाच्छ्रवणमात्रादित्युच्यते -

प्रणतिब्रह्मचर्योपसर्पणानि कृत्वा सिद्धिर्बहुकालात् तद्वत् ॥१९॥

[(प्रणतिब्रह्मचर्योपसर्पणानि बहुकालात् कृत्वा) प्रणतिं गुरौ नम्रता नम्रभावानुष्ठानं] विद्या सीखने के लिए पहले गुरु के प्रति नम्रता श्रद्धा होनी चाहिए [ब्रह्मचर्य संयमं] ब्रह्मचर्य का पालन तथा पांचों इंद्रियों पर संयम करना होता है [तथोपसर्पणं गुरोरुपसेवनं स्वयमेव श्रद्धया सेवां बहुकालं कृत्वा] ज्ञान प्राप्ति के लिए तीसरा कार्य है गुरु की सेवा करना स्वयं अपने हाथ से लंबे काल तक श्रद्धा पूर्वक उनकी सेवा करना [(सिद्धिः-तद्वत्) ज्ञानसिद्धिर्ज्ञानलाभो भवति तद्वदिन्द्रवत्] ज्ञान की सिद्धि ज्ञान की प्राप्ति होती है इन्द्र के समान, [यथेन्द्रः प्रणत्यादीन् चिरं सम्यगनुष्ठाय ज्ञानलाभं प्राप्तवान्] जैसे इन्द्र ने प्रणति आदि (नम्रता, ब्रह्मचर्य, गुरु सेवा) तीन प्रकार से लंबे काल तक सम्यक् रूप से अनुष्ठान करके ज्ञान लाभ प्राप्त किया [गुरुभक्तितो ज्ञानप्राप्तिश्च श्रुतौ प्रदर्श्यतेऽपि] श्रुति में भी ऐसा कहा गया है कि गुरु भक्ति से ज्ञान की प्राप्ति होती है [“यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥”] जैसे व्यक्ति का ईश्वर के प्रति ऊंचा समर्पण होता है ऐसा ही समर्पण गुरु जी के प्रति होना चाहिए। जिसकी परमात्मा के समान श्रद्धा गुरु जी में होती है उसको गुरु के द्वारा उपदेश की गयी सिखायी गयी विद्या प्रकाशित (समझ) में आ जाती है (श्वेता ६. ६३) ॥ १९ ॥

क्या नम्रता, श्रद्धा, पूर्वक, ब्रह्मचर्य का पालन, गुरु सेवा आदि लंबे (१०१ वर्ष तक) काल तक करने से सबको विद्या प्राप्त हो जाती है। इस आकांक्षा पर कहते हैं-

न कालनियमो वामदेववत् ॥ २० ॥

सूत्रार्थ= विवेक प्राप्ति में समय का कोई नियम नहीं है किसी को जल्दी ज्ञान प्राप्त हो जाएगा किसी को लंबे काल में, वामदेव के समान।

[(कालनियमः-न वामदेववत्) विवेकसिद्धौ कालनियमो नास्ति] इस विवेक (तत्त्वज्ञान) की प्राप्ति में काल का कोई नियम नहीं है (निश्चित समयावधि नहीं है), [कस्यचित् क्षिप्रं कस्यचिच्चिरेण कस्यचिदिहजन्मनि कस्यचिदपरजन्मनि विवेकसिद्धिर्भवति वामदेववत्] किसी को बहुत काल में होगा किसी को शीघ्र किसी को इसी जन्म में किसी को अनेकों जन्मों में विवेक की सिद्धि होती है, वामदेव के समान, [वामदेवस्य यथेहजन्मनि विवेकसिद्धिर्जाता प्रागजन्मसाधनानुष्ठानात्] वामदेव जी को इसी जन्म

सांख्यदर्शनम्-चतुर्थोऽध्यायः

(प्रणतिब्रह्मचर्योपसर्पणानि बहुकालात् कृत्वा) प्रणतिं गुरौ नम्रता नम्रभावानुष्ठानं ब्रह्मचर्यं संयमं तथोपसर्पणं गुरोरुपसेवनं स्वयमेव श्रद्धया सेवां बहुकालं कृत्वा (सिद्धिः-तद्वत्) ज्ञानसिद्धिर्ज्ञानलाभो भवति तद्वदिन्द्रवत्, यथेन्द्रः प्रणत्यादीन् चिरं सम्यगनुष्ठाय ज्ञानलाभं प्राप्तवान् गुरुभक्तितो ज्ञानप्राप्तिश्च श्रुतौ प्रदर्श्यतेऽपि “यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥” (श्वेता० ६.६३) ॥१९॥

किं प्रणत्यादिना श्रवणं बहुकालमनिवार्यमित्याकांक्षायामुच्यते -

न कालनियमो वामदेववत् ॥ २० ॥

(कालनियमः-न वामदेववत्) विवेकसिद्धौ कालनियमो नास्ति, कस्यचित् क्षिप्रं कस्यचिच्चिरेण कस्यचिदिहजन्मनि कस्यचिदपरजन्मनि विवेकसिद्धिर्भवति वामदेववत्, वामदेवस्य यथेहजन्मनि

में विवेक की सिद्धि हो गयी, पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण। [उक्तं यथा “तद्वैततत्पश्यन् ऋषिर्वाग्मदेवः प्रतिपेदे, अहं मनुरभवमहं सूर्यश्च”] जैसे कहा भी है- इस प्रकार से आत्मा परमात्मा को देखते हुए (जब उनकी समाधि लगी), तब वामदेव ऋषि ने ऐसा कहा “ अब मैं मनु हो गया हूँ, अब मैं सूर्य हो गया हूँ ” (मनु-मननशील ज्ञानी, सूर्य=सूर्य के समान तेजस्वी) (बृह० १.४.१०) ॥ २० ॥

वस्तुतस्तु -

अध्यस्तरूपोपासनात् पारम्पर्येण यज्ञोपासकानामिव ॥ २१ ॥

सूत्रार्थः=अध्ययन से जो परमात्मा का स्वरूप समझ में आया उस रूप की उपासना से श्रवण, मनन आदि की परंपरा से समय तो लगता ही है, जैसे यज्ञ की विधियों में लगता है।

[(पारम्पर्येण-अध्यस्तरूपोपासनात्) श्रवणमनननिदिध्यासनसाक्षात्कारपरम्पराक्रमेण खल्वध्यस्तस्य गुरुणा शास्त्रेण वाऽधिक्षिप्तस्य प्रस्तावितस्य* रूपस्य परमात्मस्वरूपस्योपासनाद् विवेकसिद्धिर्भवति] श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार इस परम्परा से गुरु के द्वारा अथवा शास्त्र के द्वारा ईश्वर का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया, ऐसे परमात्मा के स्वरूप की उपासना करने से विवेक की सिद्धि होती है तत्र कालोऽपेक्ष्यते हि यहाँ काल की अपेक्षा है (विवेक सिद्धि में समय लगता है) [(यज्ञोपासकानाम्-इव) यथा यज्ञकर्मानुष्ठातॄणां पारम्पर्येण यज्ञविधीनामनुक्रमेणानुष्ठानादभ्युदयसिद्धिर्भवति तत्र कालोऽप्यपेक्ष्यते हि] जैसे यज्ञ कर्म अनुष्ठान करने वालों की परम्परा से यज्ञ विधि में अनुक्रम से अनुष्ठान करने से अभ्युदय की सिद्धि होती है, ऐसे ही अध्यात्म में ईश्वर प्राप्ति में समय लगता है ॥ २१ ॥

यदि परम्परा से विवेक की सिद्धि होती है और यज्ञ करने वाले परम्परा से बहुत लम्बी विधियाँ करते हैं, ऐसा करने से उनको उत्कृष्ट लोक की सिद्धि होती है। फिर तो यज्ञ ही कर लेना चाहिए। इस शंका पर कहते हैं-

इतरलाभेऽप्यावृत्तिः पञ्चाग्नियोगतो जन्मश्रुतेः ॥ २२ ॥

सांख्यदर्शनम्-चतुर्थोऽध्यायः

विवेकसिद्धिर्जाता प्राग्जन्मसाधनानुष्ठानात् । उक्तं यथा “तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वाग्देवः प्रतिपेदे, अहं मनुरभवमहं सूर्यश्च” (बृह० १.४.१०) ॥ २० ॥

वस्तुतस्तु -

अध्यस्तरूपोपासनात् पारम्पर्येण यज्ञोपासकानामिव ॥ २१ ॥

(पारम्पर्येण-अध्यस्तरूपोपासनात्) श्रवणमनननिदिध्यासनसाक्षात्कारपरम्पराक्रमेण खल्वध्यस्तस्य गुरुणा शास्त्रेण वाऽधिक्षिप्तस्य प्रस्तावितस्य* रूपस्य परमात्मस्वरूपस्योपासनाद् विवेकसिद्धिर्भवति तत्र कालोऽपेक्ष्यते हि (यज्ञोपासकानाम्-इव) यथा यज्ञकर्मानुष्ठानां पारम्पर्येण यज्ञविधीनामनुक्रमेणानुष्ठानादभ्युदयसिद्धिर्भवति तत्र कालोऽप्यपेक्ष्यते हि ॥ २१ ॥

यद्येवं पारम्पर्येण विवेकः सिध्यति तर्हि यज्ञोपासकानामपि पारम्पर्येणोत्कृष्ट-लोकसिद्धिर्भवति

सूत्रार्थ= यज्ञादि के अनुष्ठान से उत्कृष्ट योनि तो प्राप्त होगी किन्तु विवेक की सिद्धि व मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी, पंचाग्नि योग से पुनर्जन्म सुनाई देने से।

[(इतरलाभे-अपि-आवृत्तिः) यज्ञानुष्ठानेन खलूत्कृष्टलोकप्राप्तावपि भवति हि तत आवृत्तिः] यज्ञ कर्म का अनुष्ठान करने से पुण्य लोक उत्कृष्ट लोक की प्राप्ति तो होगी ही फिर भी वहाँ से लौकर आना तो पड़ेगा (पुनर्जन्म तो होगा) [(पञ्चाग्नियोगतः-जन्मश्रुतेः) पञ्चाग्नियोगतः पुनर्जन्म श्रूयते] यज्ञ करने से पंचाग्नि योग से पुनर्जन्म होता है [“असौ वाव लोको गौतमाग्निः...योषा वाव गौतमाग्निः...तस्या आहुतेर्गर्भः सम्भवति” (छान्दो० ५.४.१-८.२) देवयानपथेत्युक्तम्] । [तस्माद् यज्ञानुष्ठानं न विवेकसाधनं यद्वा मोक्षसाधनम्] इसलिए यज्ञ का अनुष्ठान करना न तो विवेक प्राप्ति का साधन है और न ही मोक्ष प्राप्ति का साधन है। [अतोविवेकिना तन्नोपादेयम्] अतः विवेकी व्यक्ति को यज्ञ की उपादेयता (आवश्यकता) नहीं है ॥ २२ ॥

किन्तु -

विरक्तस्य हेयहानमुपादेयोपादानं हंसक्षीरवत् ॥ २३ ॥

सूत्रार्थ=जो विरक्त व्यक्ति है जिसको वैराग्य हो गया है, वह हानिकारक छोड़ने योग्य मोक्ष मार्ग के बाधकों को त्याग देता है और जो ग्रहण करने योग्य हैं उनको ग्रहण कर लेता है, हंस के जल को छोड़कर दूध को पीने के समान।

[(विरक्तस्य) विवेकप्राप्तस्य तु (हेयहानम्-उपादेयोपादानम्) हेयस्य हानं तथोपादेयस्योपादानं कार्यम्] विवेक प्राप्ति के बाद (विवेकी व्यक्ति में) हानिकारक जो बंधन का कारण बने ऐसी वस्तुओं पदार्थों को त्याग देना और ग्रहण करने योग्य पदार्थ आदि को ग्रहण कर लेना चाहिए [(हंसक्षीरवत्) यथा हंसो जलमिश्रितदुग्धाज्जलं त्याज्यं त्यजति तथोपादेयं दुग्धमुपादत्ते] जैसे हंस जल मिश्रित दूध से जो छोड़ने योग्य है “जल” उसे छोड़ देता है, और पीने योग्य ग्रहण करने योग्य दूध को पी लेता है (इसी को नीर-क्षीर विवेक बोलते हैं) [तद्वद्विरक्तो विवेकी यदावृत्तिनिमित्तं तत् त्यजति यद् विमोक्षसाधनं तदुपादत्ते] ऐसे

तदा यज्ञ एवोपास्यः । अत्रोच्यते -

इतरलाभेऽप्यावृत्तिः पञ्चाग्नियोगतो जन्मश्रुतेः ॥ २२ ॥

(इतरलाभे-अपि-आवृत्तिः) यज्ञानुष्ठानेन खलूत्कृष्टलोकप्राप्तावपि भवति हि तत आवृत्तिः (पञ्चाग्नियोगतः-जन्मश्रुतेः) पञ्चाग्नियोगतः पुनर्जन्म श्रूयते “असौ वाव लोको गौतमाग्निः...योषा वाव गौतमाग्निः...तस्या आहुतेर्गर्भः सम्भवति” (छान्दो० ५.४.१-८.२) देवयानपथेत्युक्तम् । तस्माद् यज्ञानुष्ठानं न विवेकसाधनं यद्वा मोक्षसाधनम् । अतोविवेकिना तन्नोपादेयम् ॥ २२ ॥

किन्तु -

विरक्तस्य हेयहानमुपादेयोपादानं हंसक्षीरवत् ॥ २३ ॥

(विरक्तस्य) विवेकप्राप्तस्य तु (हेयहानम्-उपादेयोपादानम्) हेयस्य हानं तथोपादेयस्योपादानं कार्यम् (हंसक्षीरवत्) यथा हंसो जलमिश्रितदुग्धाज्जलं त्याज्यं त्यजति तथोपादेयं दुग्धमुपादत्ते तद्वद्विरक्तो विवेकी यदावृत्तिनिमित्तं तत् त्यजति यद् विमोक्षसाधनं तदुपादत्ते ॥ २३ ॥

ही विवेकी व्यक्ति जो बार-बार जन्म मरण के चक्र में बांधने वाले पदार्थ हैं उनको छोड़ देता है, और जो मोक्ष के साधन हैं उनको पकड़ लेता है ग्रहण कर लेता है ॥ २३ ॥

यतः -

लब्धातिशययोगात् तद्वत् ॥ २४ ॥

सूत्रार्थ= विवेकी व्यक्ति तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में अतिशय योग्यता वाला होता है, हंस के समान ।

[(लब्धातिशययोगात्) विरक्तो हि विवेके लब्धातिशययोगो भवति] विरक्त व्यक्ति विवेक प्राप्ति के क्षेत्र में अत्यधिक योग्यता प्राप्त कर चुका होता है [तेन विवेकेऽतिशयो योगो युक्त्योग्यता प्राप्ता तस्मिन् विरक्ते विवेकस्य विवेचनस्य पृथक् पृथक्त्वस्तुज्ञानस्य हेयोपादेययोः पृथक्-पृथक् करणस्य योग्यता भवति] उस विरक्त व्यक्ति के द्वारा बहुत सारी योग्यता प्राप्त करने के बाद उस विरक्त व्यक्ति में विवेक की अर्थात् विवेचन की वस्तु के पृथक्-पृथक् ज्ञान की इतनी योग्यता होती है कि वह हेय और उपादेय को पृथक्-पृथक् कर लेता है (समझ लेता है) [(तद्वत्) हंसवत् हंसस्येव] हंस के समान जैसे वह दूध और पानी को अलग अलग कर लेता है ॥ २४ ॥

अविरक्तस्य तु -

न कामचारित्वं रागोपहते शुकवत् ॥ २५ ॥

सूत्रार्थ= अविवेकी व्यक्ति राग से वशीभूत “दवाए जाने” होने पर त्याज्य मार्ग को छोड़ने में ग्राह्य मार्ग को अपनाने में अपनी इच्छानुसार स्वतन्त्रता पूर्वक समर्थ नहीं होता है, पिंजरे में बंधे तोते के समान ।

[(रागोपहते) अविरक्तः खलु रागेण परिवृतो रागस्य वशीभूतः] जो अविरक्त व्यक्ति है जिसको वैराग्य नहीं हुआ वह चारों ओर से राग से घिरा रहता है राग के वशीभूत रहता है, [तस्य रागोपहतत्वे सति]

सांख्यदर्शनम्-चतुर्थोऽध्यायः

यतः -

लब्धातिशययोगात् तद्वत् ॥ २४ ॥

(लब्धातिशययोगात्) विरक्तो हि विवेके लब्धातिशययोगो भवति तेन विवेकेऽतिशयो योगो युक्तिर्योग्यता प्राप्ता तस्मिन् विरक्ते विवेकस्य विवेचनस्य पृथक् पृथग्वस्तुज्ञानस्य हेयोपादेययोः पृथक् पृथक् करणस्य योग्यता भवति (तद्वत्) हंसवत् हंसस्येव ॥ २४ ॥

अविरक्तस्य तु -

न कामचारित्वं रागोपहते शुकवत् ॥ २५ ॥

(रागोपहते) अविरक्तः खलु रागेण परिवृतो रागस्य वशीभूतः, तस्य रागोपहतत्वे सति (कामचारित्वं न शुकवत्) कामचारित्वं हेयस्य हानायापादेयस्योपादानाय यद्वा हेयं मार्गं त्यक्तुमुपादेयं मार्गं चोपादातुं यथेष्टसञ्चारित्वं स्वातन्त्र्यं नास्ति शुकवद् रागवशीभूतत्वात् । यथा शुकः पक्षी पञ्जरोपहतः

उस व्यक्ति के राग से दबे होने पर [(कामचारित्वं न शुकवत्) कामचारित्वं हेयस्य हानायापादेयस्योपादानाय यद्वा हेयं मार्गं त्यक्तुमुपादेयं मार्गं चोपादातुं यथेष्टसञ्चारित्वं स्वातन्त्र्यं नास्ति शुकवद् रागवशीभूतत्वात्] अपनी इच्छा अनुसार जीवन जीना कार्य करना नहीं हो पाता, हेय को छोड़ नहीं पाता और उपादेय को ग्रहण नहीं कर पाता अथवा हेय मार्ग को त्यागने में और उपादेय मार्ग को अपनाने में समर्थ नहीं होता और अपनी इच्छा से स्वतंत्रता से जीवन यापन नहीं कर पाता । कैसे? तोते के समान, राग के वशीभूत होने से । [यथा शुकः पक्षी पञ्जरोपहतः पञ्जरेण परिवृतः सन् यथेष्टकामचारी न भवति तस्य यथेच्छगमने स्वातन्त्र्यं न भवति] जैसे तोता पिंजरे से ढका हुआ (पिंजरे में बन्द) होता है तब अपनी इच्छानुसार वह गमन नहीं कर पाता, उड़ नहीं पाता, स्वतन्त्रता नहीं होती [तद्वत् पुरुषोऽपि रागरूपे पञ्जरे बद्धो न कामचारी भवति] ऐसे ही राग रूपी पिंजरे में बंधा हुआ जीवात्मा भी अपनी इच्छानुसार कुछ कार्य भ्रमण आदि नहीं कर पाता ॥ २५ ॥

ये जीवात्मा राग रूपी पिंजरे में कैसे बन्ध जाता है? इस पर कहते हैं-

गुणयोगाद् बद्धः * शुकवत् ॥ २६ ॥

सूत्रार्थ= जीवात्मा अपने भोक्तृपन के कारण राग रूपी पिंजरे में बन्ध जाता है, जैसे तोता मधुर बोलने के कारण पिंजरे में बन्ध जाता है ।

[(शुकवत्-गुणयोगाद्-बद्धः) यथा शुकः पक्षी मधुरभाषणगुणवशाद् बद्धो लौहपञ्जरे तथैव पुरुषो भोक्तृत्वगुणवशाद् रागरूपपञ्जरे बद्धः] जैसे तोता पक्षी मधुर भाषण गुण के कारण लोहे के पिंजरे में बांध लिया जाता है उसी प्रकार से पुरुष (जीवात्मा) प्रकृति के सुख भोगने के गुण के कारण राग रूपी पिंजरे में बन्ध जाता है ॥ २६ ॥

परन्तु -

न भोगाद्रागशान्तिर्मुनिवत् ॥ २७ ॥

सूत्रार्थ= भोगों को भोगने से राग की शांति नहीं होती, जैसे सौभरि मुनि की नहीं हुई ।

पञ्जरेण परिवृतः सन् यथेष्टकामचारी न भवति तस्य यथेच्छगमने स्वातन्त्र्यं न भवति तद्वत् पुरुषोऽपि रागरूपे पञ्जरे बद्धो न कामचारी भवति ॥ २५ ॥

कथं तर्हि रागे रागरूपे पञ्जरे बद्ध इत्युच्यते -

गुणयोगाद् बद्धः * शुकवत् ॥ २६ ॥

(शुकवत्-गुणयोगात्-बद्धः) यथा शुकः पक्षी मधुरभाषणगुणवशाद् बद्धो लौहपञ्जरे तथैव पुरुषो भोक्तृत्वगुणवशाद् रागरूपपञ्जरे बद्धः ॥ २६ ॥

परन्तु -

न भोगाद्रागशान्तिर्मुनिवत् ॥ २७ ॥

(भोगात्-रागशान्तिः-न) भोगात् खलु रागशान्तिर्न कदापि भवति (मुनिवत्) यथा सौभरेर्मुनेर्भोगान्न रागशान्तिर्जाता । तदुक्तं सौभरिणा “आमृत्युतो नैव मनोरथानामन्तोऽस्ति विज्ञातमिदं

[(भोगात्-रागशान्तिः-न) भोगात् खलु रागशान्तिर्न कदापि भवति (मुनिवत्) यथा सौभरेर्मुनेर्भोगान्न रागशान्तिर्जाता] भोगों को भोगने से राग शांति कभी भी नहीं होती (जैसे आग में घी डालने से और आग और बढ़ती है, वैसे ही इच्छों को पूरा करने से इच्छाएँ और बढ़ती हैं), सौभरि मुनि के खूब भोगों को भोगा लेकिन भोग से राग शांति नहीं हुई । [तदुक्तं सौभरिणा “आमृत्युतो नैव मनोरथानामन्तोऽस्ति विज्ञातमिदं मयाऽद्य । मनोरथासक्तिपरस्य चित्तं न जायते वै परमार्थसिद्धिः ”] तब सौभरि मुनि अपना अनुभव सुनाते हैं- मृत्यु तक कितना ही भोगो को भोगते जाओ मनोरथों को पूरा करते जाओ ये कभी समाप्त होने वाले नहीं हैं इनसे शांति तृप्ति मिलने वाली नहीं है यह मैंने जान लिया है । यदि भोगों को अंधाधुंध भोगते जाएंगे तो इच्छा बढ़ती ही जाएंगी, जो व्यक्ति भोगों को मनोरथों को आसक्ति पूर्वक भोगता है उसका चित्त कभी भी परमार्थ ईश्वर धर्म अध्यात्म की तरह नहीं लगता ॥ २७ ॥

फिर कैसे राग की शांति होगी? इस विषय पर कहते हैं-

दोषदर्शनादुभयोः ॥ २८ ॥

सूत्रार्थ=भोग्य पदार्थ (संसार के विभिन्न पदार्थ) भोक्ताभाव रखने वाले जीवात्मा इन दोनों में दोष देखने से राग की निवृत्ति होती है ॥

[(उभयोः-दोषदर्शनाद्) उभयोर्भोक्तृभावस्य भोग्यपदार्थस्य च दोषदर्शनात्] दोनों (भोग्य पदार्थ प्रकृति और भोक्ता जीवात्मा) दोष देखने से राग की शांति हो जाती है । [भोक्तृभावस्य पुनःपुनर्जन्म गर्भवासो मरणत्रासो भिन्नभिन्नयोनिप्रवेशश्च] भोक्ता होने का दोष ये है यदि हम बार बार भोगेंगे तो भोगने के लिए शरीर चाहिए, पुनर्जन्म होगा गर्भवास करना पड़ेगा मृत्यु का भय बना रहेगा भिन्न-भिन्न योनियों में जाना पड़ेगा तथा [भोग्यपदार्थस्य परिणतिर्विकारित्वमस्थिरत्वमपायाच्छोकप्राप्तिर्भोगादनुपशान्तिः परपीडा चेत्येतादृशानां दोषाणां दर्शनाद् भवति रागशान्तिः] भोग्य पदार्थ में दोष यह देखे की ये परिवर्तनशील हैं, विकार आते हैं, स्थिरता नहीं रहती, किसी वस्तु के छिन जाने टूट-फुट जाने से दुख होता है, बार-बार भोगने से

सांख्यदर्शनम्-चतुर्थोऽध्यायः

मयाऽद्य । मनोरथासक्तिपरस्य चित्तं न जायते वै परमार्थसंगि” ॥ २७ ॥

तर्हि कस्मादुपायात् स्याद् रागशान्तिरित्युच्यते -

दोषदर्शनादुभयोः ॥ २८ ॥

(उभयोः-दोषदर्शनाद्) उभयोर्भोक्तृभावस्य भोग्यपदार्थस्य च दोषदर्शनात् । भोक्तृभावस्य पुनःपुनर्जन्म गर्भवासो मरणत्रासो भिन्नभिन्नयोनिप्रवेशश्च तथा भोग्य-पदार्थस्य परिणतिर्विकारित्वमस्थिरत्वमपायाच्छेकप्राप्तिर्भोगादनुपशान्तिः परपीडा चेत्येतादृशानां दोषाणां दर्शनाद् भवति रागशान्तिः । तत्र दोषभावनया रागो निवर्तते । उक्तं च “न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्तमेव भूय एवाभिवर्धते ।” (मनु० २.९४) “विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसंगहिंसादोषदर्शनादस्वीकरणम्” (योग० २.३० व्यास) ॥ २८ ॥

सति रागे तु -

शांति तो मिलती नहीं, अपने सुख के लिए किसी न किसी को दुःख देना पड़ता है। इस प्रकार से दोनों में भोक्ता एवं भोग्य पदार्थ में दोषों को देखने से राग शांति हो जाती है। [तत्र दोषभावनया रागो निवर्तते] वहाँ यह समझना चाहिए की दोष भावना से राग की निवृत्ति हो जाती है। [उक्तं च “न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्तमेव भूय एवाभिवर्धते ।”] और कहा भी है-इच्छाओं की पूर्ति करने से इच्छों की कभी शांति नहीं होती। जैसे अग्नि में घी डालने से अग्नि कम नहीं बढ़ती है ऐसे ही राग भोग बढ़ते हैं। [(मनु० २.९४) “विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसंगहिंसादोषदर्शनादस्वीकरणम्” (योग० २.३० व्यास)] विषयों के अर्जन (संपत्ति कमाना), रक्षण (कमाई की रक्षा), क्षय (कमाई की चोरी, कमी), संग (खाते-पीते रहने की आदत), हिंसा (किसी न किसी को दुख व अन्याय करना) आदि दोष दर्शन ॥ २८ ॥

सति रागे तु -

न मलिनचेतस्युपदेशबीजप्ररोहोऽजवत् ॥ २९ ॥

सूत्रार्थ= मलिन चित्त में उपदेश का बीज अंकुर नहीं होता, राजा अज के समान ।

[(मलिनचेतसि-उपदेशबीजप्ररोहः-न-अजवत्) रागाच्चेतो मलिनं भवति तदा मलिनचेतसि खलूपदेशबीजस्य प्ररोहोऽङ्कुरप्रादुर्भावो न जायते, अजवत्] राग से चित्त मलिन हो जाता है तब मलिन चित्त में उपदेश बीज का कोई भी अंकुर नहीं फूटता, राजा अज के समान। [यथा भार्यारागोपहतेऽजनामके नृपे वसिष्ठोपदेशान्न स्थैर्यप्रादुर्भावो जातः] रघुकुल में अज नाम के राजा थे उनको अपनी पत्नी से बहुत प्रेम था, पत्नी के दहान्त से बहुत दुःखी रहते थे तब वशिष्ठ जी ने शरीर की अनित्यता पर उपदेश किया, परंतु पत्नी के प्रति राग की अधिकता के कारण उपदेश का कोई लाभ नहीं हुआ ॥ २९ ॥

अपितु -

नाभासमात्रमपि मलिनदर्पणवत् ॥ ३० ॥

न मलिनचेतस्युपदेशबीजप्ररोहोऽजवत् ॥२९॥

(मलिनचेतसि-उपदेशबीजप्ररोहः-न-अजवत्) रागाच्चेतो मलिनं भवति तदा मलिनचेतसि खलूपदेशबीजस्य प्ररोहोऽङ्कुरप्रादुर्भावो न जायते, अजवत्। यथा भार्यारागोपहतेऽजनामके नृपे वसिष्ठेपदेशान्न स्थैर्यप्रादुर्भावो जातः ॥ २९ ॥

अपितु -

नाभासमात्रमपि मलिनदर्पणवत् ॥३०॥

(आभासमात्रम्-अपि न मलिनदर्पणवत्) रागलितचेतसि तूपदेशस्याभासमात्रमपि न भवति मलिनदर्पणवत्, यथा मलिनदर्पणे मललिप्तेदर्पणे कस्यचिदाभासोऽपि न प्रतिबिम्बति ॥३०॥

अथ च रागलिप्ते मलिनचित्ते किलोपदेशस्यापि स्यादन्यथा भावो यतः -

न तज्जस्यापि तद्रूपता पंकजवत् ॥३१॥

सूत्रार्थ= राग से युक्त चित्त में उपदेश का आभास भी नहीं दिखता, मलिन दर्पण के समान ॥३०॥

[(आभासमात्रम्-अपि न मलिनदर्पणवत्) रागलितचेतसि तूपदेशस्याभासमात्रमपि न भवति मलिनदर्पणवत्] राग से लित चित्त में उपदेश का आभास मात्र भी नहीं दिखता, मलिन दर्पण के समान, [यथा मलिनदर्पणे मललिप्तेदर्पणे कस्यचिदाभासोऽपि न प्रतिबिम्बति] जैसे मलिन दर्पण में मल से लित दर्पण में कोई भी आभास प्रतिबिम्ब नहीं दिखता ऐसे ही राग से लित चित्त में उपदेश का कोई प्रभाव नहीं दिखता ॥३०॥

इतना ही नहीं राग लित मलिन चित्त में उपदेश का अन्यथा भाव भी ले लिया जाता है, क्योंकि -

न तज्जस्यापि तद्रूपता पंकजवत् ॥३१॥

सूत्रार्थ= जैसे अशुद्ध भूमि में उत्पन्न हुए अंकुर की गुणवत्ता शुद्ध भूमि में उत्पन्न हुए अंकुर के गुणवत्ता के समान नहीं होती, वैसे ही राग युक्त मलिन चित्त में उत्तम उपदेश का भी प्रभाव नहीं पड़ता।

[(तज्जस्य-अपि तद्रूपता न पंकजवत्) तज्जस्य तद्भवस्य खल्वपि तत्सदृशता न भवति पंकजवत्] (मलिन चित्त वाले को उपदेश देने से विपरीत प्रभाव भी पद सकता है) उस अच्छे बीज से अच्छी फसल होनी चाहिए, फिर भी वैसी फसल नहीं हो पाती, पंकज के समान, [यथा ह्युत्तमं बीजं पंके प्रक्षिप्तं न तद्रूपं तद्गुणमुत्पद्यते किन्त्वन्यथैवोत्पद्यते] जैसे उत्तम बीज कीचड़ में डाल देने पर, वैसे अच्छे गुणों वाला नहीं उगता किन्तु फसल अथवा पौधा खराब, टेढ़ा-मेढ़ा या दोष युक्त पैदा होता है। [तस्माद्रागलिप्ते मलिनचित्ते स्यादुत्तमोपदेशस्यान्यथाभावो यतः सोऽन्यथा हि मंस्यते] इसी तरह से जो राग लित मलिन चित्त है उसको यदि उपदेश दिया जाए तो भी उसका उल्टा प्रभाव पड़ेगा उपदेश ठीक-ठीक दिया जाएगा अपनी बुद्धि से वह उल्टा ही अर्थ निकलेगा ॥३१॥

एक शंका उठाई- पाँच विषयों का राग हानिकारक होवे ये तो समझ में आया परंतु जो योगाभ्यास से

सांख्यदर्शनम्-चतुर्थोऽध्यायः

(तज्जस्य-अपि तद्रूपता न पंकजवत्) तज्जस्य तद्भवस्य खल्वपि तत्सदृशता न भवति पंकजवत्, यथा ह्युत्तमं बीजं पंके प्रक्षिप्तं न तद्रूपं तद्गुणमुत्पद्यते किन्त्वन्यथैवोत्पद्यते । तस्माद्रागलिसे मलिनचित्ते स्यादुत्तमोपदेशस्यान्यथाभावो यतः सोऽन्यथा हि मंस्यते ॥३१॥

भवतु विषयाणां रागो हानिकारकः परन्तु या योगाभ्यासात् विभूतीनां विविधसिद्धीनां प्रवृत्तिस्तया स्यात् कृतकृत्यता किं पुनर्महाप्रयत्नाद् विवेकादुपास्याधानेन । अत्रोच्यते -

न भूतियोगेऽपि कृतकृत्यतोपास्यसिद्धिवदुपास्यसिद्धिवत् ॥३२॥

(भूतियोगे-अपि कृतकृत्यता न) विभूतियोगे विविधसिद्धीनां प्राप्तावपि कृतकृत्यता न भवति (उपास्यसिद्धिवत्) यथा हि कृतकृत्यता भवति विवेकादुपास्यसिद्धौ ब्रह्मसम्पत्तौ, यतो-यतो विभूतियोगे भवति पुनरावृत्तिः, विवेकादुपास्यसिद्धौ भवति मोक्षः । उपास्यसिद्धिवत्, इति द्विरुक्तिरध्यायसमाप्त्यर्था ॥३२॥

विभूतियों से जो सिद्धि प्राप्त हुई उन सिद्धियों से व्यक्ति की कृतकृत्यता हो जावे? फिर विवेक से तत्त्वज्ञान से परमात्मा की उपासना करे । इतनी लाबी चौड़ी मेहनत क्यों करें? इस शंका पर कहते हैं-

न भूतियोगेऽपि कृतकृत्यतोपास्यसिद्धिवदुपास्यसिद्धिवत् ॥३२॥

सूत्रार्थ= अनेक योग सिद्धियों के प्राप्त होने पर भी वैसी सफलता=पूर्ण सफलता नहीं मिलती जैसी सफलता ईश्वर प्राप्ति से मिलती है ।

[(भूतियोगे-अपि कृतकृत्यता न) विभूतियोगे विविधसिद्धीनां प्राप्तावपि कृतकृत्यता न भवति] विभूति योग से विविध प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त कर लेने पर भी कृतकृत्यता नहीं होती [(उपास्यसिद्धिवत्) यथा हि कृतकृत्यता भवति विवेकादुपास्यसिद्धौ ब्रह्मसम्पत्तौ] विवेक सिद्धि में ब्रह्म प्राप्ति में जो सफलता होती है वैसी सफलता सिद्धियों से नहीं होती, [यतो विभूतियोगे भवति पुनरावृत्तिः, विवेकादुपास्यसिद्धौ भवति मोक्षः] क्योंकि विभूति योग से पुनर्जन्म होगा और विवेक की सिद्धि से ईश्वर प्राप्ति से मोक्ष की प्राप्ति होती है । [उपास्यसिद्धिवत्, इति द्विरुक्तिरध्यायसमाप्त्यर्था] सूत्र में दो बार जो कथन किया गया उपास्य सिद्धिवत् यह अध्याय समाप्ति का संकेत है ॥३२॥

सांख्यदर्शने समाप्तस्वतुर्थोऽध्यायः स्वामिब्रह्ममुनिभाष्योपेतः ।

